आस्तिकता की अनिवार्यता

गोपीनाथ पारीक गोपेश
अध्यक्ष
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्

चरकसंहिता सूत्रस्थान के यज्ज:पुरुषीय अध्याय में आचार्य ने हितकारी - अहितकारी पदार्थों की एक किंवा चरणों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है। वहाँ पर सबसे मुख्य त्याज्य में 'नास्तिक' को कहा गया है - पातकेभ्य: परं चैतत्पातकं नास्तिकग्रह:' | नास्तिक की दृष्टि में परीक्ष्य और परीक्षा, कर्त्ता और कारण, कर्म और कर्मफल ही नहीं अपितु देव, ऋषि, सिद्ध, विद्वान् आदि सभी मिथ्या होते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। अत: नास्तिक के संग को सबसे निकृष्ट पाप कहा गया है।

भारतीय जीवनपरम्परा के आधारभूत शास्त्र चार हैं - श्रुति, स्मृति, पुराण और आगम। वेद, निगम आदि श्रुति के पर्याय हैं। धर्मशास्त्र स्मृति का पर्याय है। सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षणों से युक्त शास्त्र को पुराण कहा जाता है। भगवान शंकर के मुख से निकले हुये (आगत) और पार्वती द्वारा धारित तथा भगवान् वासुदेव द्वारा समर्थित होने के कारण इन्हें आगम शास्त्र कहा गया है। ये आगम तीन हैं - वैष्णव आगम, शैव आगम तथा शाक्त आगम। ये सभी शास्त्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते हुए आस्तिकता पर बल देते हैं।

वेद का अर्थ किसी पुस्तक से नहीं है। इसका अर्थ आध्यात्मिक नियमों के उस भांडार से है, जिसे विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न कालों में संचित किया। इन नियमों की खोज करने वाले ऋषि कहलाये और पूर्ण पुण्य प्राणी के रूप में हम उनका सम्मान करते हैं। वेदों के ज्ञानमय प्रकरणों की उपनिषदों में विशद व्याख्या की गयी है। इनमें ईश्वर की दार्शनिक व्याख्या उच्चस्तर पर की गयी है। उपनिषदों का यह ज्ञानकाण्ड हमारे सनातन धर्म का आध्यात्मिक अंश है। इसका नाम वेदान्त भी है। वेदान्त अर्थात् वेदों का अन्तिम भाग, वेदों का चरम लक्ष्य। वेदान्त के रहस्यों को स्वामी विवकानन्द जी ने भी व्यापक प्रचार-प्रसार किया है-

जफना की जनता के समक्ष स्वामीजी ने जो भाषण दिया, उसमें कहा गया कि " यह सृष्टि किसने की ? ईश्वर ने। अंग्रेजी में गॉड' शब्द का जो प्रचलित अर्थ है, उससे मेरा मतलब नहीं? निश्चय ही उस अर्थ में नहीं, बल्कि उससे काफी भिन्न अर्थ में प्रयोग का मेरा अभिप्राय है। अंग्रेजी में और कोई उपयुक्त शब्द नहीं है। संस्कृत ब्रह्म शब्द का प्रयोग कर ना ही

सबसे अधिक युक्तिसंमत है। वही इस जगत् प्रपंच का सामान्य कारण है। ब्रह्म क्या है? वह नित्य, नित्य शुद्ध, नित्यबुद्ध, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परम दयामय, सर्वव्यापी निराकार, अखण्ड है। वह इस जगत् की सृष्टि करता है। इस सर्जन की शक्ति निरन्तर गतिशील है। वह अनन्तकाल से सृष्टि रच रहा है. - वह कभी आराम नहीं करता। गीता का वह अंश स्मरण करो जहाँ श्रीकृष्ण कह रहे हैं - यदि मैं क्षण भर के लिये विश्राम लूँ, तो यह जगत् नष्ट हो जाय (गीता 3-24) "

सन्तप्रवर श्री दादू दयाल जी महाराज इसी ब्रह्म की चराचर जगत् में निरन्तर परिपूर्ण रूप से विद्यमानता को यो व्यक्त करते हैं -

दादू ब्रह्म जीव हरि आतमा खेलें गोदी कान्ह ।
सकल निरन्तर भर रह्या साक्षीभूत सुजान ॥

विगत शताब्दी के प्रथम दशक से पांचवे दशक तक सृष्टि सम्बन्धी मसलों पर यदि टालस्टाय, रोभ्यां रोला, गोर्की, जार्ज बर्न ईशा, बटेड रसल, टी. एस इलियट, लिनयू तांग, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गाँधी के वक्तव्यों को मार्ग दर्शक सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार किया जाता था, तो उनके साथ अलबर्ट आइंस्टीन का नाम भी आता था। इस आइंस्टीन ने वेदान्त और विज्ञान के सुखद सामंजस्य के दर्शन किये थे।

प्राचीन काल के चार्वाक, बौद्धों आदि तथा आधुनिक काल के कार्ल मार्क्स, लेनिन आदि नास्तिको ने उस ब्रह्म सत्ता रूप परमेश्वर को स्वीकार नहीं किया। इनका मानना है कि भौतिक वस्तुयें भौतिक कारणों से ही बनी है।

यद्यपि धर्म, दर्शन और अध्यात्म पर्यायवाची नहीं है, किन्तु जब विज्ञान बनाम इनका प्रश्न आता है तो इन सबको एक ही मान लिया जाता है। ये सब अतीन्द्रिय अनुभव के आश्रित हैं और विज्ञान प्रयोगशाला के स्थूल प्रयोगों पर निर्भर है। ब्रह्मविद्या और भौतिक विज्ञान दोनों की साधना के लिये एकाग्रता अनिवार्य है। जब मनुष्य आस्तिकता के साथ वैज्ञानिक साधना में संलग्न होता है तो उसका चरम लक्ष्य व्यापक, गहन, सूक्ष्म और आन्तरिक होता जाता है। वह फिर भौतिक मूल्यों का अतिक्रमण करके आध्यात्मिक परम श्रेयस् को ओर अग्रसर होता जाता है। आध्यात्मिक सत्य प्राकृतिक वस्तुओं के सत्य से भिन्न होता है। सूर्य और चन्द्र के अस्त हो जाने पर भी और अग्नि के बुझ जाने पर भी उसका अमित प्रकाश आत्मा में आलोकित होता है -आत्मैवास्य ज्योतिर्भवति (बृहदारण्यकोपनिषद्) । यदि कोई आस्तिकता के अभाव में भी कुछ प्राप्त करने का दंभ भरता है, तो वह पारसमणि को खो कर घुंघची पा गया है -

ताहि कबहुँ भल कहई न कोई ।
गुंजा गहई परसमनि खोई ॥

'विजयिनी मानवता हो जाय ' (कामा- यूनी) मानवता को विजय प्राप्त करने के लिये वेद (ब्रह्म विज्ञान), स्मृति (समाज विज्ञान) और आधुनिक विज्ञान (भौतिक विज्ञान) का समन्वय आवश्यक है। इस त्रिवेणी की सहसाधना के बिना हम सत्य के यथार्थ को, यथार्थ के सत्य को नहीं पा सकते। कोई भी विज्ञान जब वह आस्तिकता से अनुस्यूत होता है तब ही मानवोपकारक बन सकता है। विद्वन्मुनि प्राणाचार्य कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री ने कहा है कि -

विज्ञान का मानव के साथ कोई सम्बन्ध जुड़ सकता है, तो वह आस्तिकता के द्वारा ही, अन्यथा विज्ञान का मानव से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। यह ठीक है कि विज्ञान से सब कुछ जाना जाता है, परन्तु उस जानने वाले को किससे जाना जाय ? सम्पूर्ण विज्ञान एक विशाल ज्ञान का क्षेत्र है, यदि इसमें क्षेत्रज्ञ नहीं, तो इसका ज्ञाता कौन है?" इन सब का उत्तर आस्तिकता के बल पर ही दिया जा सकता है। आस्तिकवाद के सबसे प्रबल समर्थक वेद है और आयुर्वेद विज्ञान की वेदों में पूर्ण आस्था है। आयुर्वेद के मूलग्रन्थों में पदे पदे यह आस्था अभिव्यक्त हुई है।

चरकसंहिता के शरीर स्थान अध्याय प्रथम में - 'प्रभवो न ह्यनादित्वात् विद्यते परमात्मन:', 'अव्यक्तमात्मा क्षेत्रज्ञः शाश्वतो विभुरव्ययः, विभुत्वमत एवास्य यस्मात् सर्वगतो महान्' आदि वर्णित वाक्य इस परम सत्ता की ओर ही इंगित करते हैं। सुश्रुतसंहिता के शारीर स्थान अध्याय प्रथम में भी "स्वभावमीश्वरम्- ." इस श्लोक द्वारा ईश्वर की सत्ता में सहमति प्रकट की गयी है।

आचार्य चरक ने पुरुष के दो भेद किये हैं- एक अनादि और दूसरा हेतुज । अनादिपुरुष नित्य और हेतुजात (संयोगज) पुरुष अनित्य माने गये हैं। अनादि पुरुष सत्य, अहैतुक और नित्य माने जाते हैं तथा हेतुज पुरुष असत्, संयोगज और अनित्य कह कर निर्देष्ट हुए हैं। मानव शरीर में उस शाश्वत पुरुष की अस्तित्वोपलब्धि के लक्षण भी आचार्य चरक ने बताये हैं कि- प्राण- अपान, निमेषादि जीवन, मन की गति, एक इन्द्रीय से दूसरे इन्द्रिय में मन का संचार, इन्द्रियार्थों में इन्द्रियों की प्रेरणा, इन्द्रियार्थों का ग्रहण, स्वप्न में देशान्तर संचार, इच्छा, सुख, दुःख, प्रयत्न, चेतना, धृति, स्मृति आदि ये परमात्मा के लिंग हैं।

'विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया' (रघुवंश) कालिदासोक्त इस कथन को विशद करते हुये आयुर्वेद अप्रतिम विद्वान् स्व. डा. श्री. भास्कर गोविन्द घाणेकर लिखते हैं कि - यह विषामृतत्व तीन बातों पर निर्भर होता है - 1. ज्ञान - औषधार्थ प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्यों के नाम-रूपादि का तथा उनके गुणधर्मों का यथार्थ ज्ञान। इसके होने से वे अमृतसम स्वास्थ्यकर और न होने से वे विषसम अस्वास्थ्यकर होते हैं। २. योजना - केवल नाम रूप गुणादि के ज्ञान से फल प्राप्त नहीं होता, रोग व रोगी का ठीक परीक्षण कर के उनकी योजना करनी पड़ती है। ठीक योजना करने से अमृतमय और आयुक्त योजना करने से विषसम फल मिलता है। 3. ईश्वरेच्छा- सर्वशक्तिमान परमेश्वर विष को अमृत और अमृत को

विष कर सकता है, इस विषय में अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है-

गरल सरल पान सुमन समान शूल,
होनी अनहोनी अनहोनी होनी होई है।

दैवव्यपाश्रय औषध का प्रथम उल्लेख (चरक०सू० 11) इसी बात को दुहराता है। और अन्त में यह प्रसंग स्मरण रखने योग्य है महाभारत के युद्ध में अर्जुन का रथ भीष्म के बाणों से जल गया था, किन्तु श्री कृष्ण ने उस रथ को बनाये रखा। वे स्वयं रथ और घोडे बन गये। जब युद्ध समाप्त हुआ तो अपने शिविर में पहुँचते ही श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा. 'अर्जुन! आज तुम पहले उतर जाओ। अर्जुन को यह बात नयी लगी। फिर भी अर्जुन कृष्ण की आज्ञा के अनुसार स्वयं रथ से उतर गया और अपने सारे शस्त्रास्त्रों को भी उतार लिया। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण रथ से कूदे और वह रथ घोड़ों समेत जल कर राख हो गया। अत: हमें ईश्वर की इस शक्ति को समझना होगा। 'योगक्षेमं वहाम्यहम् की पालना में सतत संलग्न उस परमात्मस्वरूप श्रीकृष्ण के लिये व्यासदेव ने मुक्तकंठ से गाया है-

ऐते चांशकला: पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड्यन्ति युगे युगे ।।

-श्रीमद् भागवत 1-3-28

भगवान् के कई अन्य अवतार अंशावतार या कलावतार है किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं पूर्णावतार हैं। जब जब इनके भक्त लोग किसी भी प्रकार के दैत्यों से व्याकुल होने लगते हैं, तब युग युग में समय समय पर अनेक रूप धारण कर भगवान् उनकी रक्षा करते हैं।

धर्म की परिभाषा विस्तृत है, उसे कई रूपों में अभिव्यक्त किया है, उनका यथा शक्य निर्वाहन आस्तिकता के लिये आवश्यक भी है, परन्तु यदि कहा जाय तो परम धर्म ईश्वर की शरणागति ही है और इसी से सब धर्म सध जाते है। सार रूप में यही आस्तिकता है। धर्म सर्वधर्मान् परित्याज्य मामेकं शरणं व्रज गीता में कहे गये इस उद्बोधन को ध्यान में रखते हुये आस्तिकता को हृदयङ्गम कर हमें अपने जीवन को सफल सार्थक बनाना चाहिये - यही मेरा अनुरोध है। शुभं भूयात्।